International Journal of Sanskrit Research 2023; 9(1): 164-167

International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519
IJSR 2023; 9(1): 164-167
© 2023 IJSR
www.anantaajournal.com
Received: 22-11-2022
Accepted: 23-12-2022

तानिया डसगोत्रा
शोधच्छात्रा पी.एच.डी. संस्कृत विभाग जम्मू विश्वविद्यालय, जम्मू और कश्मीर, भारत

Corresponding Author:
तानिया डसगोत्रा
शोधच्छात्रा पी.एच.डी. संस्कृत विभाग जम्मू विश्वविद्यालय, जम्मू और कश्मीर, भारत

रस प्रक्रिया निरूपण में आचार्य शंकुक का योगदान एवं उसकी समीक्षा

तानिया डसगोत्रा

प्रस्तावना

प्राचीन संस्कृत काव्यशास्त्र के छः प्रमुख सिद्धान्तों रस, रीति ध्वनि, अलंकार, औचित्य एवं वक्रोक्ति में से साहित्यविदों के मध्य रस सिद्धान्त आज भी अध्ययन अध्यापन एवं शोध के रूप में प्रासंगिक है। नाट्यशास्त्र प्रणेता आचार्य भरत के रस निरूपण संबंधी कथन ''विभावानुभावव्यभिचारीभाव संयोगात् रस निष्पति'' के द्वितीय व्याख्याता आचार्य शङकुक का मत अनुमितिवाद के नाम से विख्यात है इस मत के अनुसार रस की अनुभूति अनुमान के द्वारा होती है। किन्तु कुछ विद्वानों ने यह आक्षेप किया है कि रस की अनुभूति अनुमान के द्वारा नहीं हो सकती। इसी तथ्य का विश्लेषण प्रस्तुत पत्र में किया गया है यद्यपि अभिनवगुप्त का मत सर्वमान्य है परन्तु हम शङकुक के मत को झुठला नहीं सकते।

यदि हम रस शब्द की व्युत्पत्ति करे तो यह कहना अभिप्रेत लगता है कि रस शब्द की निष्पति 'रस' धातु में अच प्रत्यय के योग से हुई है। जिसका अर्थ है आनन्द। जो काव्य पाठक या श्रोता के हृदय में आनन्द का अनुभव कराता है उसे रस कहते है। सामान्य व्यवहार में रस शब्द का प्रयोग चार अर्थों में होता है। 1) पदार्थों का रस – जिसमें अम्ल, तिक्त, कषाय आदि आते है, 2) आयुर्वेद का रस, 3) साहित्य का रस और 4) मोक्ष या भक्ति का रस।[1] वैयाकरणों ने रस शब्द की व्युत्पति विविध प्रकार से की है। यथा – रस्यते आस्वाद्यते इति रसः, रस्यते अनेन इति रसः, रसति रसयति वा रसः, रसनं रसः आस्वादः। इस प्रकार रस प्रधानतः आस्वादन के अर्थ को ज्ञापित करता है। अर्थात जिसके माध्यम से भावों का आस्वादन होता है, उसे रस कहते है। भरत एवं अग्निपुराणकार काव्य की आत्मा या काव्य शरीर का प्राण रस को मानते है।[2] इसी रस को साहित्य में काव्यास्वाद अथवा काव्यानन्द कहा जाता हैं। काव्य–शास्त्र के तत्त्वज्ञ विद्वानों ने काव्य की आत्मा रस को ही माना है। संस्कृत काव्यशास्त्र के आद्याचार्य भरतमुनि रस सम्प्रदाय के प्रवर्तक हैं आचार्य भरत मुनि अपने नाट्यशास्त्र में रस का लक्षण देते हुए कहते है कि रस के बिना किसी भी अर्थ को ग्रहण नहीं किया जा सकता।[3]

'न हि रसादृते काश्चिदप्यर्थः प्रवर्ततेः'।

रस के विषय में तैतिरीयोपनिषद में कहा गया है 'रसो वै सः'[4] अर्थात् वही रस का स्वरूप है। भरतमुनि का यह प्रसिद्ध सूत्र है जिसे भरतसूत्र भी कहते है–

'तत्र विभावानुभावव्यभिचारिसंयोगाद रसनिष्पतिः'[5]

अर्थात् विभाव, अनुभाव और व्यभिचारीभाव के संयोग से रस की निष्पति होती है। भरतमुनि के रस सूत्र पर अनेक आचार्यों ने अनेक प्रकार से व्याख्याएं की है। अभिनवगुप्त ने अभिनव भारती में पूर्ववर्ती उन सभी आचार्यों के मतों को प्रस्तुत करके उनकी समीक्षा की और अन्त में अपने मत को स्थापित किया। भरतमुनि के इस विख्यात रस सूत्र पर चार आचार्यों ने अपनी–अपनी व्याखाएं प्रस्तुत की है जिनके नाम इस प्रकार से है – 1) भट्टलोल्लट, 2) शङकुक, 3) भट्टनायक, 4) अभिनवगुप्त। इन चारों आचार्यों ने अपने–अपने मतानुसार संयोग और निष्पति के अर्थ को व्यक्त किया है किन्तु अभिनवगुप्त की अभिनवभारती के अतिरिक्त अन्य कोई भी व्याख्या सम्प्रति उपलब्ध नहीं है। यह प्रसिद्ध रससूत्र ही रससिद्धान्त का प्राणभूत है।

रस निष्पति के सम्बन्ध में जिन आचार्यों ने भरत के सूत्र की व्याख्या प्रस्तुत की है उनमें भट्टलोल्लट का नाम सबसे पहले आता है। ये कश्मीरी थे। रस विवेचन के इतिहास में भट्टलोल्लट के योगदान का महत्त्व शाश्वत है। इनका ग्रन्थ उपलब्ध नहीं है। रस संबंधी मत के उद्धरण अभिनवगुप्त के ग्रन्थ

अभिनवभारती और ध्वन्यालोकलोचन में उदधृत् है। इन्हीं उद्धरणों के आधार पर लोल्लट के तत्सम्बन्धी विचार प्रकाश में आये। लोल्लट के अनुसार विभाव आदि के साथ स्थायीभाव के संयोग से रस की निष्पति होती है।[6]

'विभावादिभिः संयोगोऽर्थात् स्थायिनस्ततो रसनिष्पतिः'।

भट्टलोल्लट के अनुसार संयोग शब्द के तीन अर्थ है – उत्पाद्य–उत्पादक भाव, गम्य–गम्यक भाव और पोष्य–पोषक भाव। इस प्रकार निष्पति के भी तीन अर्थ होते है – उत्पत्ति–प्रतीति, उपचिति। इसी तरह स्थायीभाव का विभाव के साथ संयोग अर्थात् उत्पाद्य–उत्पादक भाव होने पर निष्पति का अर्थ उत्पत्ति होगा। अनुभावों के साथ गम्य–गमक भाव सम्बन्ध होने पर निष्पति का अर्थ प्रतीति और व्यभिचारी भावों के साथ संयोग अर्थात् पोष्य–पोषक भाव सम्बन्ध होने पर निष्पति का अर्थ उपचित्ति होगा।[7] रामादि या अनुकार्य में रस की स्थिति मानने के कारण या रामादि में रस की उत्पत्ति स्वीकार करने पर इस मत को 'उत्पत्तिवाद' कहा जाता है और दर्शकों के द्वारा अनुकर्त्ता पर रामादि मूल पात्रों का आरोप करने के कारण इसे 'आरोपवाद' भी कहते है।[8] इसी प्रकार भट्टलोल्लट के मत में स्थायीभाव और रस का अन्तर यही है कि विभाव, अनुभाव आदि के द्वारा पुष्ट हुआ स्थायीभाव ही रस संज्ञक होता है लेकिन ये दोनों साक्षात रूप से अनुकार्य राम आदि में विद्यमान रहते हैं और अनुकर्त्ता नट आदि में उनका अनुभव प्रतीत होता है। भट्टलोल्लट मीमांसा मत के अनुयायी के साथ वेदान्ती और शैव भी कहलाते हैं।

आचार्य भट्टलोल्लट के अनन्तर श्री शंकुक भरत के रस सूत्र के द्वितीय व्याख्याता आचार्य हैं। इनके मत को 'अनुमितिवाद' कहते हैं। यह न्याय–सिद्धान्त के अनुयायी है। इन्होंने भट्टलोल्लट के मत का खण्डन इसलिए किया है। क्योंकि लोल्लट ने नाटक का दर्शकों के साथ सम्बन्ध स्थापित नहीं किया है। जबकि शंकुक ने सामाजिक के साथ रस का सम्बन्ध दिखलाने का प्रयत्न किया है। शंकुक के अनुसार रस की निष्पति नहीं होती अपितु उसका अनुमान किया जाता है इनके अनुसार संयोग का अर्थ अनुमाप्य–अनुमापक भाव सम्बन्ध और निष्पति का अर्थ अनुमिति है।[9] जिसका विस्तृत वर्णन आगे किया जाएगा।

आचार्य भरत के रस सूत्र के तीसरे प्रमुख व्याख्याकार भट्टनायक हैं जिनका सिद्धान्त भुक्तिवाद के नाम से जाना जाता हैं इनका मानना है कि रस की निष्पति, न अनुकार्य राम में होती है और न अनुकर्त्ता नट आदि में। अनुकार्य और अनुकर्त्ता दोनों तटस्थ है, उदासीन है। उनको रसानुभूति नहीं होती है। वास्तविक अनुभूति तो सामाजिकों को होती है। भट्टनायक के मतानुसार रस न प्रतीत होता है, न उत्पन्न होता है और न ही अभिव्यक्त होता है। अपितु काव्य तथा नाटक में अभिधा से द्वितीय अर्थात् बाद में होने वाले विभावादि के साधारणीकरण रूप भावकत्व नामक व्यापार से भाव्यमान, स्थायी भाव, सत्त्व के उद्रेक से होने वाली प्रकाशात्मिका तथा आनन्दमय, चित की विश्रांति रूप एवं परब्रह्म के आस्वाद के समान भोजकत्व व्यापार के द्वारा भोगा जाता है।[10] भट्टनायक सांख्यवादी है। इनके मत में संयोग का अर्थ भोज्य–भोजक भाव और निष्पति का अर्थ 'भुक्ति' है। इस प्रकार विभाव, अनुभाव और व्यभिचारीभाव द्वारा भोज्य–भोजक भाव सम्बन्ध से रस की निष्पति (भुक्ति) होती है। अर्थात् सामाजिकों के द्वारा रस का आस्वादन किया जाता है।[11] भट्टनायक उत्पत्तिवाद, अनुमितिवाद तथा अभिव्यक्तिवाद की आलोचना करते है। भट्टलोल्लट ने मुख्य रूप से तटस्थ राम आदि में और गौणरूप से तटस्थ नट में रस की उत्पत्ति मानी है पर इसमें सामाजिक का कही वर्णन नहीं हुआ है अतएव ताटस्थ्येनरसोत्पत्ति मानने वाले भट्टलोल्लट का सिद्धान्त ठीक नहीं है। श्रीशंकुक ने तटस्थ नट में रस की अनुमिति प्रतीति मानी है और उसके द्वारा संस्कारवश सामाजिक की रस चर्वणा का उपपादन करने का प्रयत्न किया है। परन्तु अनुमिति तो केवल परोक्ष ज्ञान रूप होती है। साक्षात्कारात्मक रसानुभूति की समस्या उसके द्वारा हल नहीं हो सकती है। इसलिए यह सिद्धान्त भी ठीक नहीं है। यहां 'न उत्पद्यते' से भट्टलोल्लट के उत्पत्तिवाद का और 'न प्रतीयते' से शंकुक के अनुमितिवाद का निराकरण किया गया है। अभिनवगुप्त के मत का खण्डन करते हुए भट्टनायक का कहना है कि रस की अभिव्यक्ति न अनुकर्त्ता को होती है और न सामाजिक को, क्योंकि सदैव विद्यमान वस्तु की ही अभिव्यक्ति होती है। और अभिव्यक्ति वस्तु की सत्ता के पूर्व में और बाद में भी रहती है। किन्तु रसानुभूति स्वरूप होने के कारण उसकी सत्ता अनुभूति काल विशेष में ही रहती हैं उसके पहले या बाद में उसका अस्तित्त्व नहीं रहता। अतः सामाजिकों को उसकी अभिव्यक्ति नहीं हो सकती। इस प्रकार भट्टनायक ने उपर्युक्त तीनों मतों का खण्डन कर भुक्तिवाद की स्थापना करते हुए स्वमतानुसार रस–भोग की प्रक्रिया का निरूपण किया।

रससूत्र के उपर्युक्त तीनों आचार्यों के अनन्तर आचार्य अभिनवगुप्त ने उपर्युक्त तीनों आचार्यों के मतों को उद्धृत करके अपना मत व्यक्त किया है। इन्होंने रससूत्र में संयोग पद का अर्थ व्यंग्य–व्यञ्जकभाव सम्बन्ध और निष्पति का अर्थ अभिव्यक्ति किया है। इस प्रकार विभाव, अनुभाव, और व्यभिचारीभाव के साथ व्यंग्य व्यञ्जकभाव सम्बन्ध से रस की अभिव्यक्ति होती है और उसी से रत्यादि स्थायीभाव रस के रूप में अभिव्यक्त हो जाता है। अभिनवगुप्त का रस सिद्धान्त अभिव्यक्तिवाद के नाम से जाना जाता है। उनके मतानुसार रत्यादि स्थायीभाव सामाजिकों के हृदय में सदैव विद्यमान रहते है जो घोर निद्रित अवस्था में रहते है, किन्तु काव्य के पढ़ने या सुनने से अथवा नाटक देखने से उत्पन्न हो जाते है। अर्थात् विभाव आदि के साथ संयोग होने से सुषुप्त अवस्था में पड़े हुए स्थायीभावों की पुनः उत्पत्ति हो जाती है। जिससे वे अभिव्यक्त होकर रस का रूप धारण कर लेते है।[12] जिस प्रकार मिट्टी की सुगन्ध उसमें सदैव विद्यमान रहती है और जल के सिंचन से प्रकट होती है उसी प्रकार विभावादि के द्वारा ही सामाजिकों के भाव अभिव्यक्त होते है।[13]

अभिनवगुप्त भट्टलोल्लट और शंकुक के मत का खण्डन करते हुए कहते है कि न तो विभावादि से उपचित और न ही विभावादि से अनुमित स्थायीभाव रस कहलाता है। अपितु रस स्थायीभाव से विलक्षण प्रकार का होता है। इसी प्रकार भट्टनायक के मत का खण्डन करते हुए कहते है कि यदि रस की उत्पत्ति, प्रतीति और अभिव्यक्ति नहीं होती, तो उसे असत् ही समझना चाहिए। क्योंकि रस तो अभिव्यक्त होता है और वह अलौकिक है। अतः भारतीय काव्य शास्त्र में अभिनवगुप्त का मत ही मान्य है।

श्री शंकुक का भी कोई ग्रंथ उपलब्ध नहीं है। भट्टलोल्लट के समान इनके मत का संक्षिप्त उद्धरण ध्वन्यालोकलोचन और काव्य प्रकाश के रूप में प्राप्त होता है। उन्हीं के आधार पर शंकुक के रस विषयक विचारों का ज्ञान होता है। भट्टलोल्लट के मत का खण्डन करते हुए शंकुक ने अनुमितिवाद नामक सिद्धान्त की स्थापना की, जिसके अनुसार रस की निष्पत्ति नहीं, अपितु अनुमिति होती है अर्थात् अनुमान होता है। इन्होंने रस की स्थिति वास्तविक पात्र में स्वीकार की है। किन्तु नट के नाट्य–कौशल से प्रभावित होकर ही सामाजिक नट में रस की स्थिति का अनुमान कर लेता है। वह अपने कौशल को इस प्रकार प्रदर्शित करता है कि वे कृत्रिम होते हुए भी अनुकार्य के ही भाव विदित होते है। दर्शक अनुकर्त्ता में रस की स्थिति को मिथ्या न समझकर उसका अनुमान करता है। जिससे उसे आनन्द की अनुभूति होती है।

काव्यप्रकाशकार आचार्य मम्मट ने अभिनव के आधार पर ही शंकुक का मत उद्धृत किया है किन्तु उनकी वाक्यरचना में कुछ भिन्नता दृष्टिगोचर होती है। 'यह राम ही' है या यही राम है इस तरह की सम्यक प्रतीति 'यह राम है' इसका बाध हो जाने पर 'यह राम है या नहीं' इस तरह की संशय प्रतीति एवं 'यह राम जैसा है' इस प्रकार की सादृश्य प्रतीति, इन चार प्रकार से विलक्षण प्रकार की प्रतीति चित्रतुरगन्याय से होती है जैसे 'यह राम है'।[14] जिस प्रकार

चित्र में अश्व को देखकर बालक वास्तविक अश्व का अनुमान कर लेता है। किन्तु बालक यह जानता है कि चित्र में दिखाई देने वाला घोड़ा वास्तविक नहीं है। फिर भी यह घोड़ा है, ऐसा बोलता है। ठीक इसी प्रकार दर्शक भी जानते है कि मंच पर उपस्थित अभिनेता राम और सीता नहीं है किन्तु काव्य संस्कार के कारण वह उन्हें वास्तविक मान लेते हैं।

नट या अभिनेता के अभिनय के द्वारा ही हमें रस की अनुभूति होती है। उस त्रेतायुगीन राम और सीता को किसी न नहीं देखा। ऐसी स्थिति में उनका अनुकरण करने वाले नट में हम रस की उत्पत्ति कैसे मान ले? यदि हम यह मान भी ले, तो प्रश्न उठता है कि क्या सीता वियोगी राम का अनुकरण करने वाला नट मूल राम के यथार्थ दुःख से कोई सम्बन्ध रखता है? अभिनव के पहले या बाद में उन भावों का उसके साथ कोई सम्बन्ध रहता है? यदि नहीं तो उसमें रस की उत्पत्ति कैसे मान ली जाए? क्योंकि वह केवल अनुकरण करता है उसका वास्तविक पात्र के सुख–दुख से कोई सम्बन्ध नहीं होता।[15]

जहां विभाव होता है वहां रत्यादि भाव भी अवश्य होता है। विभावादि के द्वारा ही अभिनेता में रत्यादिभाव का अनुमान कर लिया जाता है। जिस प्रकार कोहरे से ढके हुए प्रदेश में धूम की भ्रान्ति होने से धूम के साथ नियम से रहने वाली अग्नि का अनुमान होता है। इसी प्रकार नट अपने कौशल से 'ये विभावादि मेरे है' इस तरह अविद्यमान विभाव आदि से व्यापक रत्यादि भाव का अनुमान कर लिया जाता है और वह अनुमीयमान रति अपने सौन्दर्य के कारण सामाजिकों के आस्वादन के योग्य होती है। अतः शंकुक के अनुसार रस की अनुमिति ही रसनिष्पति है। अतः भट्टलोल्लट के समान श्री शंकुक भी रस की स्थिति वास्तविक पात्रों में ही स्वीकार करते है। किन्तु लोल्लट जहां स्थायी भावों के द्वारा रस की उत्पत्ति पर बल देते है। वही शंकुक रस में अनुमान की बात करते हैं।

काव्य के अनुशीलन से शिक्षा और उसके अभ्यास से सम्पादित नाटक कार्य से अर्थात् अभिनय से उस नट के द्वारा ही प्रकाशित किए जाने वाले कारण, कार्य और सहकारी कारण जिन्हें काव्य में विभाव, अनुभाव और व्यभिचारी भाव कहा जाता है। जो कृत्रिम होने पर भी सामाजिकों द्वारा कृत्रिम नहीं समझे जाते।[16] शंकुक के अनुसार रस रामादि मूल पात्रों में विद्यमान होता है, किन्तु अभिनय कौशल से वह नट में कृत्रिम प्रतीत नहीं होता अपितु उससे अधिक विलक्षण प्रतीत होता है। शंकुक ने रस को अनुमीयमान नहीं कहा है उन्होंने रस को भरत के समान ही आस्वाद कहा है। जिसे सामाजिक अपनी वासना के रूप में नाट्य दर्शन से प्राप्त करता है।[17] शंकुक ने स्पष्ट किया है कि अभिनय की अनुभूति न तो मिथ्या ज्ञान से, न संशय, न वास्तविक और न ही सादृश्य ज्ञान से होती है। वह एक विलक्षण कलात्मक प्रतीति होती है। इस प्रकार शंकुक की रस प्रक्रिया की व्याख्या भरत की व्याख्या से पूर्णतया सम्मान है। अभिनवगुप्त के अनुसार शंकुक का अनुमितिवाद सारहीन सिद्वान्त है। श्री शंकुक का अनुकरण–सिद्धान्त सहृदय सामाजिकों की दृष्टि से माननीय नहीं है क्योंकि अनुकरण सादृश्य प्रतीति पर आधारित होता है। अनुकार्य और अनुकर्त्ता को देखने से ही अनुकरण की प्रतीति होती है। किन्तु अनुकार्य के रति आदि भाव सामाजिकों में किसी भी प्रकार प्रत्यक्ष नहीं दिखाई देते। अतः यह सिद्धान्त भरतमुनि द्वारा मान्य नहीं है। इस प्रकार शंकुक का अनुकरण सिद्धान्त भी प्रामाणिक नहीं है। वस्तुतः भट्टलोल्लट के समान श्री शंकुक भी रस की स्थिति वास्तविक पात्रों में ही स्वीकार करते है। किन्तु लोल्लट जहां स्थायी भावों के द्वारा रस की उत्पत्ति पर बल देते है वही शंकुक रस में अनुमान की बात करते हैं।

कालान्तर में आचार्य शंकुक का रस–विषयक मत भी आलोचना का विषय बना, जिसमें अनेक दोषों का शोध किया गया। श्रीशंकुक ने अनुकरण एवं अनुमान को आधार बनाकर ही रस का विवेचन किया तथा दोनों में अन्योन्याश्रय सम्बन्ध बताया। किन्तु लोगों ने उन पर यह आक्षेप किया कि रस की अनुभूति अनुमान के द्वारा संभव नहीं हो सकती। जैसे किसी को भोजन करते देख अनुमान के आधार पर किसी को संतोष प्राप्त नहीं हो सकता, क्योंकि आनन्दबोध प्रत्यक्ष अनुभव का विषय है, अनुमान का नहीं! अतः अभिनेता में रस की स्थिति न तो अनुमान द्वारा सम्भव है और न सामाजिकों को इससे आनन्द प्राप्त हो सकता है। इसलिए अनुमान अथवा अनुमिति द्वारा रस आस्वादन की कल्पना करना व्यर्थ है।[18] श्री शंकुक के मत की आलोचना करते हुए अभिनवगुप्त कहते है कि कृत्रिम अभिनय के द्वारा दर्शकों को रस का अनुमान तो अवश्य होता है किन्तु उसे रस की अनुभूति क्यों होती है। इस प्रश्न का उत्तर अनुमितिवाद के द्वारा प्राप्त नहीं होता। अनुमान से जनित ज्ञान परोक्ष होता है लेकिन नाटक एवं काव्य द्वारा रसानुभूति प्रतयक्ष होती है। फिर अनुमान के द्वारा प्रत्यक्ष अनुभूति कैसे सम्भव है। जब दर्शक को यह पता है कि मंच पर होने वाला अभिनय कृत्रिम अर्थात् बनावटी है तो वह रस का अनुमान कैसे कर सकता है क्योंकि स्थायीभाव तो आत्मा और मन का विषय है। उसका अनुकरण करना असंभव है। अनुकरण तो वेशभूषा आदि का हो सकता है। इस प्रकार अनुमान अथवा अनुकरण द्वारा रस की अनुभूति तर्कसिद्ध नहीं है। अतः शंकुक का मत सर्वमान्य नहीं है।

वस्तुतः अभिनवगुप्त आदि आचार्यो ने शंकुक के मत को भली प्रकार न समझकर उनकी विभावादि की अनुकृति को रसानुकृति मान लिया। शंकुक ने कही पर भी इस बात का उल्लेख नहीं किया कि अभिनेता रामादि वास्तविक पात्रों की रसानुभूति का अनुकरण करता है।[19] इनका अभिप्राय यह हो सकता है कि अनुमान के द्वारा सहृदयों के हृदय में स्थित स्थायीभावों के जागृत होने पर रस की अनुभूति होती है। आचार्य विश्वेश्वर के अनुसार इनके सिद्धान्त को अनुमितिवाद की अपेक्षा अनुकृतिवाद कहना अधिक उचित है क्योंकि अभिनवगुप्त ने अनुकृतिवाद के खण्डन पर ही पूर्ण बल दिया है। आगे चलकर आचार्य मम्मट ने रस की अनुमिति पर अधिक बल दिया और इनके आधार पर ही शंकुक का अनुमितिवाद सिद्धान्त विख्यात हुआ। वस्तुतः हम कह सकते है कि भारतीय काव्यशास्त्र में अभिनवगुप्त का मत भले ही सर्वमान्य हो, फिर भी शंकुक के मत से शोधकर्त्ता को एक अनुशीलन दृष्टि तो मिलती ही है। डॉ. सुन्दरलाल कथूरिया ने भी लोल्लट आदि द्वारा प्रतिपादित मान्यताओं की तथ्यपरक विवेचना करते हुए यह निष्कर्ष निकाला है कि भट्टलोल्लट का उत्पत्तिवाद, शंकुक का अनुमितिवाद भट्टनायक का भुक्तिवाद तथा अभिनवगुप्त का अभिव्यक्तिवाद एक दूसरे के विरोधी नहीं, अपितु पूरक ही है।[20]

अतः श्री शंकुक के मत की इतनी आलोचना होने के बावजूद भी उन्हें रसचिन्तन को आगे बढ़ाने का श्रेय प्राप्त है। इन्होंने अपने अनुकरण सिद्धान्त द्वारा कवि–कर्म कौशल के महत्त्व को स्थापित किया। इसके साथ ही रस प्रक्रिया में अभिनय कौशल को समुचित स्थान देकर रस विवेचन के क्षेत्र का विस्तार तो किया ही है। इनके अनुसार रस की अनुभूति सहृदय सामाजिक को होती है। वही प्रत्यक्ष भोक्ता है उसके बिना रस की अनुभूति नहीं हो सकती। इस प्रकार रस प्रक्रिया निरूपण में शंकुक के योगदान को नकारा नहीं जा सकता। आज भी आचार्य शंकुक शोधकर्ताओं एवं अध्ययनकर्ताओं की दृष्टि पथ में तो आते ही हैं।

संदर्भ सूची

1. रस सिद्धान्त – डॉ. नगेन्द्र, पृ. 3
2. नहि रसादृते कश्चिदर्थः प्रवर्तत् इति ना. शा. पष्ठ अध्याय, पृ. 92, एवं ना. शा. 6/37, वाग्वैदग्ध्यप्रधानेऽपि रस एवात्र जीवितम् पृथकप्रयत्न–निर्वर्त्य वाग्वक्त्रिम्णि रसाद् वपुः।। अग्नि पुराण 337/33
3. क) नाट्यशास्त्र, अध्याय – 6, पृ. 33
   ख) अभिनवभारती, अध्याय – 6, पृ. 441
4. तैतिरीयोपनिषद, ब्रह्मानन्दवली, सप्तम् अनुवाक
5. क) नाट्यशास्त्र, अध्याय – 6, पृ. 34
   ख) अभिनवभारती, अध्याय – 6, पृ. 442
   ग) रस सिद्धान्त, अध्याय – 2, पृ. 79

6. नाट्यशास्त्र, अभिनवभारती, अध्याय – 6, पृ. 35
7. नाट्यशास्त्र, अध्याय – 6, पृ. 36, आचार्य भरतमुनि
8. भारतीय काव्यशास्त्र (संस्कृत) का इतिहास, पृ. 101
9. नाट्यशास्त्र – 6/40
10. ''न ताटस्थ्येन नात्मगतत्वेन रसः प्रतीयते नोत्पद्यते नाभिव्यज्यतु अपि तु काव्ये नाट्ये चाभिधातो द्वितीयेन विभावादिसाधारणीकरणात्मना भावकत्व व्यापारेण भाव्यमानः स्थायी सत्त्वोद्रेकप्रकाशानन्दमयसंविद्विश्रान्तिसतत्त्वेन भोगेन भुज्यते''।। काव्यप्रकाश – 4/126
11. नाट्यशास्त्र – 6/54
12. भारतीय काव्यशास्त्र का इतिहास, पृ. 112
13. भारतीय काव्यशास्त्र के सिद्धान्त, डॉ. कृष्णदेव झारी, पृ. 225
14. राम एवायम् अयमेव राम इति, न रामोऽयमित्यौत्तर कालिके बाधे रामोऽयमिति रामः स्याद्वा न वाऽयमिति, रामसदृशोऽयमिति च सम्यङ्मिथ्यासंशयसादृश्यप्रतीतिभ्यो। विलक्षणया चित्रतुरगादिन्यायेन रामोऽयमिति प्रतिपत्त्या ग्राहये नटे। काव्यप्रकाश, श्रीनिवास – शास्त्री, चतुर्थ उल्लास, पृ. 123
15. भारतीय एवं पाश्चात्य काव्यशास्त्र, पृ. 96
16. इत्यादिकाव्यानुसन्धानबलाच्छिक्षाभ्यासनिर्वर्त्तितस्वकार्यप्रकटनेन च नटे नैव प्रकाशितैः कारण कार्य सहकारिभिः कृत्रिमरपि तथाऽनभिमन्यमानैर्विभावादि – शब्दव्यपदेश्यैः। काव्यप्रकाश, चतुर्थ उल्लास, पृ. 123
17. भारतीय काव्यशास्त्र के सिद्धान्त, पृ. 222
18. भारतीय काव्यशास्त्र (संस्कृत) का इतिास, पृ. 103 राजवंश सहाय हीरा
19. भारतीय काव्यशास्त्र के सिद्धान्त, पृ. 222, डॉ. कृष्णदेव झारी
20. रस–सिद्धान्त आज तक, पृ. 151–152, डॉ. कृष्णगोपाल मिश्र